

ॐ खलवन पावकाय नमः
त्रयोदशो अध्यायः



श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद
'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग'
अध्याय

देह विग्रह क्षेत्र है, अर्जुन न अब तू अज्ञ है।
इसमें रहकर इसको जो अवलोकता क्षेत्रज्ञ है॥ 01

मैं स्वयं हर क्षेत्र का क्षेत्रज्ञ हूँ यह मान ले।
इनके नित्यानित्य शाश्वत धर्म को पहचान ले॥ 02

भिन्न क्यों हर क्षेत्र का, इस भू पे प्रादुर्भाव है।
मुझसे सुन क्षेत्रज्ञ का दिखता क्यों भिन्न प्रभाव है॥ 03

मत मतान्तर से रचे ऋषियों ने बहु विधि छंद है।
ब्रह्म सूत्रों के पदों में भी विनिश्चत बन्ध है॥ 04

पंचभूती देह जिसमें बुद्धि और अभिमान है।
इन्द्रियां दस, मन स्वचालित, पंच विषयी पान है॥ 05

दसों इन्द्रियों से ये मन लेता सदा आनन्द है।
शब्द है, स्पर्श है, रस रूप हैं और गन्ध है॥ 06

सुख, दुःख की चेतना है धृति का इच्छा द्वेष है।
इस विकारी क्षेत्र का अर्जुन यही संक्षेप है॥ 07

दोहा- आत्मा का फिर भी यही होता शांति स्थान।
योग युक्ति से जीव का जाग जाय यदि ज्ञान॥

ज्ञान का अदृश्य विग्रह पार्थ मुझसे श्रवण कर।
श्रेष्ठता का मान दम्भाचरण मन से हरण कर॥ 08

सृष्टि के हर जीव के प्रति हर समय हो तरलता।
भक्ति संयुत निग्रही मन गुरू के प्रति हो सरलता॥ 09

लोक या परलोक के सुख, जब न हों व्यवहार कर।
जन्म, मृत्यु, जरा, रोगादि न, हों अविचार कर॥ 10

सुत, सदन, सह भागिनी, सबमें सदा समभाव हो।
मोह, ममता, मान का मन में सदा आभाव हो॥ 11

भक्ति मुझसे, मैं तेरा, अन्यन्य यदि आचार हो।
अन्य विग्रह से न फिर मन में कोई व्यभिचार हो॥ 12

तत्व में अध्यात्म के हूँ, पार्थ, बस यह ज्ञान है।
शेष जो कुछ दृश्य या अदृश्य सब अज्ञान है॥ 13

मैं अनादि सत्, असत विग्रह भी मेरा गेय है।
पतित पावन, परम, परमानन्द प्रभु संज्ञेय है॥ 14

मैं सदा सर्वत्र सब में, व्याप्त मेरा क्षेत्र है।
कर्ण, मुख, सिर, हस्त प्रसरित सर्व दिशि मम नेत्र हैं॥ 15

अस्तु हर इन्द्रिय विषय से विज्ञ पर निष्काम हूँ।
निष्प्रयोजन, गुणावगुण मैं सबका धारण धाम हूँ॥ 16

है नहीं सीमा कोई ब्रह्माण्ड के विस्तार की।
किन्तु सूक्ष्मातिसूक्ष्म है सीमा मेरे निस्तार की॥ 17

बाह्य, अन्तर चर, अचर होकर जो अविज्ञेय है।
दूर भासित होके हर अन्तर में मेरा गेह है॥ 18

छिन्न भासित भूत में आकाश सम अविच्छिन्न हूँ।
रूद्र, विष्णु, ब्रह्म होकर भी न किंचित भिन्न हूँ॥ 19

मायातीतं, बोध गम्यं, परम पावन वाति हूँ।
त्रिगुण रहितं, ज्ञान गम्यं, बूंद में जल स्वाति हूँ॥ 20

क्या मेरा संक्षेप है या क्या मेरा विस्तार है।
मत्परायण भक्त मेरा जान लेता सार है॥ 21

प्रकृति एवं पुरुष तो अर्जुन अद्वैत, अनादि है।
और इनसे ही प्रकट संसार की हर ब्याधि है॥ 22

ये ही कारण और निवारण, इनसे सब उत्पन्न हैं।
भोक्तापन पा के सारे जीव होते खिन्न हैं॥ 23

भोगने का भाव लाता, दुःख, सुख का संग है।
हेतु कारण बन के हर योनि में लेता जन्म है॥ 24

देह स्थित हो के देता सबका सच्चा साक्ष्य हूँ।
कर्ता, भर्ता और संहर्ता हो के सबके साथ हूँ॥ 25

सूक्ष्म दृष्टा ज्ञान से जो जान ले इस मर्म को।
कर्मयोगी होके फिर पाता न दूजे जन्म को॥ 26

ध्यान धर धृति से धरा पर, धरते ऐसी वृत्ति को।
परम पावन, पूर्ण प्रभु की पान कर प्रवृत्ति को॥ 27

मन्द बुद्धि यदि न ऐसे भाव को धर पायेंगे।
ज्ञानियों से ज्ञान पा, निस्संदेह भव तर जायेंगे॥ 28

अस्तु सबका हेतु कारक जान अब मत अज्ञ बन।
क्षेत्र को अब छोड़कर, अर्जुन स्वयं क्षेत्रज्ञ बन॥ 29

मृत्यु आमुख भूत हैं सब, सबका निश्चय नाश है।
ऐसा स्थिर चित्त दृष्टा, खोलता भव पाश है॥ 30

फिर तो होकर भी न होता उसको कोई कष्ट है।
देह खोकर भी न होता, ज्ञान उसका नष्ट है॥ 31

कर्म सारे हैं प्रकृति के, प्रकृति का ही कृत्य है।
आत्मा रहती अकर्ता, प्रकृति करती नृत्य है॥ 32

**दोहा- मो सम मोह विमूढ नर, गीता ऐसो ग्रन्थ।
पूरण करहुँ पवन सुत सूझ परहि नहिं पंथ॥**

पृथक या संलग्न जब दिखता मेरा विस्तार है।
बस उसी पल ब्रह्म होता जीव को साकार है॥ 33

हूँ अनादि हो के निर्गुण भूत सारे धार्य हैं।
हो के कर्ता भी न करता स्वयं कोई कार्य है॥ 34

पाण्डु सुत ज्यों इस जगत में यह अनन्ताकाश है।
बस इसी सम जीव में स्थित मेरा आभास है॥ 35

जिस तरह इस सृष्टि को करता प्रकाशित मित्र है।
बस यों ही आलोक मेरा आत्मा में मित्र है॥ 36

इस तरह मैं क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ होकर मुक्त हूँ।
जीव जब यों देखता तो सायुज्य करता मुक्त हूँ॥ 37

दोहा- प्रभु का गीता ज्ञान सुन, अर्जुन हुये सनाथ।
मेरे मन मंदिर बसो, सदा रूक्मणी नाथ॥

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद
'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग' त्रयोदश अध्याय समाप्त